डॉ. राकेश कुमार दूबे

राजस्थान में जल संचय के परम्परागत स्रोत : वर्तमान में प्रासंगिकता

राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियां अत्यंत विचित्र हैं जिसको बनाने का बहुत बड़ा श्रेय अरावली पर्वत श्रेणियों को है। अरावली पर्वत श्रृंखला आबू पर्वत के गुरुशिखर से आरंभ होकर अलवर के सिंघाना तक फैली हैं। यह पर्वतमाला राजस्थान को दो भागों में विभक्त करती है- दक्षिण-पूर्व व उत्तर-पश्चिम जिसे सामान्यतः पूर्वी क्षेत्र व पश्चिमी क्षेत्र कहा जाता है। पूर्वीक्षेत्र में तापक्रम में प्रायः एकरूपता व सामयिक वर्षा देखने को मिलती है और साथ ही इस क्षेत्र में कई नदियां भी बहती है जिसके कारण भाग में आर्द्र जलवायु और हरियाली देखने को मिलती है। राजस्थान का पश्चिमी भाग अरावली की सूखी ढाल पर है जहां नगण्य वर्षा होती है और साथ ही बारह मास बहने वाली नदियों का भी अभाव है जिसके कारण पश्चिमी भाग अधिकांशतः "मरुभूमि" है।

राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा एवं सीमांत प्रांत है जिसकी सीमा पड़ोसी देश पाकिस्तान से मिलती है। राजस्थान की विषम भौगोलिक स्थितियों एवं अल्प वर्षा के कारण यहां पर जल का महत्व सदा से रहा है। अर्द्ध-शुष्क एवं शुष्क क्षेत्र होने के कारण तथा जल की अनुपलब्धता एवं जल स्रोतों के दूर-दूर होने के कारण यहां पर जल की समस्या भारत के अन्य प्रांतों से अधिक गंभीर रही है, यही कारण है कि यहां पर प्राचीन काल से ही जल संचय के लिए विभिन्न स्रोतों का निर्माण किया गया और वे ही जल संचय के परंपरागत स्रोत हैं जिनमें तालाब, झीलें, नाड़ी, बावड़ी, कुईं या बेरी झालरा, टोबा, और खड़ीन या जोहड़ प्रमुख हैं जिसकी राजस्थान में एक समृद्ध परंपरा रही है जो आज भी प्रासंगिक हैं।

राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियां अत्यंत विचित्र हैं जिसको बनाने का बहुत बड़ा श्रेय अरावली पर्वत श्रेणियों को है। अरावली पर्वत श्रृंखला आबू पर्वत के गुरुशिखर से आरंभ होकर अलवर के सिंघाना तक फैली हैं। यह पर्वतमाला राजस्थान को दो भागों में विभक्त करती है- दक्षिण-पूर्व व उत्तर-पश्चिम जिसे सामान्यतः पूर्वी क्षेत्र व पश्चिमी क्षेत्र कहा जाता है। पूर्वीक्षेत्र में तापक्रम में प्रायः एकरूपता व सामयिक वर्षा देखने को मिलती है और साथ ही इस क्षेत्र में कई नदियां भी बहती हैं जिसके कारण भाग में आर्द्र जलवायु और हरियाली देखने को मिलती है। राजस्थान का पश्चिमी भाग अरावली की सूखी ढाल पर है जहां नगण्य वर्षा होती है और साथ ही बारह मास बहने वाली नदियों का भी अभाव है जिसके कारण पश्चिमी भाग अधिकांशतः 'मरुभूमि' है। यही कारण है कि राजस्थान में कहीं हरे-भरे लहलहाते खेत हैं, कहीं अर्द्धशुष्क खेत हैं, कहीं पथरीली भूमि है जिसके ऊपर की घास भी जली हुई प्रतीत होती है; कहीं धूप से चिटकती पहाड़ियां हैं तो कहीं रेगिस्तान है और

इसी विषम भौगोलिक परिस्थितियों एवं अल्प वर्षा के कारण यहां पर जल का काफी महत्व रहा है और जल संचय के स्रोत विकसित किये गये।

तालाब

राजस्थान में जल संचय के परंपरागत स्रोतों में तालाबों का महत्वपूर्ण स्थान है जो वर्षाजल को संचित करता है और जिसका अस्तित्व प्राचीनकाल से मिलता है। भारतीय महाकाव्यों-रामायण और महाभारत के साथ ही पुराणों में सर्वाधिक प्राचीन और प्रमाणिक मत्स्य पुराण तक में जल के संचय स्रोत तालाब का वर्णन मिलता है कि "दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष।" राजस्थान में तालाबों के अस्तित्व की एक समृद्ध परंपरा रही है जिसका निर्माण धनीमानी व्यक्तियों द्वारा एवं कभी-कभी समाज द्वारा किया जाता था एवं इसके रखरखाव की जिम्मेदारी पूरे समाज की होती थी। तालाबों के कारण आस-पास के कुओं एवं बावड़ियों को भी जल उपलब्ध होता था साथ ही उनका जलस्तर भी बना रहता था। वैसे तो राजस्थान भर में तालाबों का अस्तित्व मिलता है पर उनमें कुछ अति प्रसिद्ध हैं जैसे चित्तौड़गढ़ में पद्मिनी तालाब, वानकिया तालाब, मुरलिया तालाब, सोनापानी तालाब; उदयपुर में बागोलिया तालाब; जैसलमेर में गढ़सीसर एवं सवाई माधोपुर में सुखसागर तालाब, कालासागर तालाब इत्यादि। इन तालाबों के जल का उपयोग पेयजल एवं सिंचाई दोनों के लिए किया जाता रहा है।

झीलें

राजस्थान में जल संचय के परंपरागत जलस्रोतों में झीलें अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं या यूं कहा जाय कि राजस्थान में सर्वाधिक जल संचय झीलों में ही होता है। यहां पर खारे पानी और मीठे पानी की कई प्रसिद्ध झीलें हैं। 1152-1163 ई. के बीच चौहान शासक ने अजमेर में वीसलसर नामक झील का निर्माण करवाया था। अजमेर की पुष्कर झील का अपना अलग ही धर्मिक महत्व है। लालसागर झील, केलाना झील, उम्मेदसागर झील और तखतसागर झील जोधपुर की प्रसिद्ध झीलें हैं जिनमें करोड़ों घनफीट जल संचित होता है। अलवर में तीन ओर से पहाड़ियों से घिरी सिलीसेट झील अत्यंत रमणीय है। उदयपुर को तो 'झीलों की नगरी' ही कहा जाता है। यहां की इतिहास प्रसिद्ध पिछोला झील इतनी वृहद है कि उसमें कई टापू समाहित हैं। यहां की सबसे प्रसिद्ध झील 'जयसमुद्र झील' है जो कि उदयपुर से 51 किमी. दूर है जिसका निर्माण उदयपुर के महाराणा जयसिंह ने 1687-1691 ई. के बीच करवाया था। यह झील संसार की दूसरी सबसे वृहद् तथा एशिया की सबसे वृहद् कृत्रिम झील है जिसके जल का उपयोग विभिन्न कार्यों में होता है।

अजमेर की पुष्कर झील का देश में अपना अलग ही धार्मिक महत्व है

नाड़ी

नाड़ी भूमि पर बना एक प्रकार का गढ्ढा या पोखर होती है जिसमें वर्षा का जल आकर एकत्र होता है। पश्चिमी राजस्थान के लगभग प्रत्येक गांव में नाड़ी का अस्तित्व मिलता है पर जोधपुर, जैसलमेर, बाड़मेर एवं नागौर में विशेषरूप से मिलता है। ऐतिहासिक परिज्ञान के अनुसार जोधपुर के संस्थापक राव जोधा ने 1520 ई. में एक नाड़ी का निर्माण करवाया था। ये नाड़ियाँ मृदा के अनुसार 3-12 मीटर तक गहरी होती हैं जिनमें 10-12 महीने तक जल संचित रहता है। नाड़ियों में से जल निकासी की व्यवस्था तो होती ही है, साथ ही समय-समय पर इनकी सफाई एवं खुदाई भी की जाती है ताकि जल संचय की मात्रा बनी रहे। राजस्थान में नाड़ियों का महत्व इतना अधिक है कि एक आंकड़े के अनुसार जैसलमेर, बाड़मेर एवं नागौर में उपयोगी जल का 38% नाड़ी के जल से पूरा किया जाता है।

राजस्थान में बनी बावडिंयों के जल का उपयोग सिंचाई, पेयजल व स्नान आदि के लिए किया जाता था

बावड़ी

राजस्थान में जल संचय के परंपरागत स्रोतों में बावड़ियों का अपना अति विशिष्ट स्थान रहा है जिसके जल का उपयोग सिंचाई, पेयजल एवं स्नान के लिए किया जाता था। राजस्थान में बावड़ी निर्माण की एक अति सशक्त परंपरा प्राचीन काल से ही मिलती है। प्राचीन धार्मिक एवं लौकिक ग्रंथों-मत्स्य पुराण, अपराजितपृच्छा एवं मेघदूत इत्यादि में बावड़ियों का उल्लेख मिलता है जिसके लिए वापी, कर्कन्धु, शकन्धु वापिका इत्यादि नाम मिलते हैं।

ऐतिहासिक प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि राजस्थान में बावड़ी निर्माण की कला शक जाति अपने साथ लेकर आयी थी। बावड़ी चौकोर तथा कई मंजिला गहरी सीढ़ीदार पक्का कुआँ होता है जो कि प्रायः मंदिरों, मठों एवं किलों के नजदीक बनाई जाती थी। इन बावड़ियों के साथ ही कहीं-कहीं बरामदे, स्नानगृह एवं आवासीय व्यवस्था भी मिलती है। इन बावड़ियों में वर्षा जल के संग्रहण के साथ ही भूमिगत जल की निकासी की भी व्यवस्था रहती थी जोधपुर व भीनमाल की बावड़ियां जहां अपनी प्राचीनता के लिए जानी जाती हैं, वहीं, बूँदी, शेखावटी एवं दौसा की बावड़ियां अपने स्थापत्य कला के लिए विख्यात हैं। राजस्थान में सबसे बड़ी बावड़ी दौसा जिले के आभानेरी ग्राम में स्थित चाँदबावड़ी है जो हर्षदमाता मंदिर के साथ बनी हुई है और इसके दोनों ओर बरामदे एवं स्नानगृह हैं। यह अपने स्थापत्य के लिए विश्वविख्यात है। इस बावड़ी में छोटी-छोटी 3500 सीढ़ियां एवं सीढ़ियों की 13 मंजिलें हैं और यह जमीन से लगभग 100 फीट गहरी है, जो न केवल राजस्थान बल्कि भारत की सबसे बड़ी एवं गहरी बावड़ी है।

कुंई या बेरी

कुंई या बेरी जल संरक्षित करने का एक परंपरागत स्रोत है जो कि पश्चिमी राजस्थान में पायी जाती है। यह 10-12 मी. गहरा एक सकरा कुंआ होता है जो सामान्यतः भूजलस्रोतों के आसपास बनाया जाता है। और रिसते हुए जल को एकत्र करता है। इसका मुंह सकरा इसलिए बनाया जाता है ताकि एकत्रित जल को वाष्पित होने से बचाया जा सके। कुंई या बेरी जल को बड़े विचित्र ढंग से संरक्षित करती है। जिस खेत में यह बनी होती है उस खेत की मेंड़ चारों तरफ से ऊँची कर दी जाती है जिससे बरसात का पानी जमीन में समाकर नमीं में बदल जाता है और कुंई की खाली जगह चारों तरफ रेत में समाई नमीं को फिर से बूँदों में बदल देती है और जल एकत्र होने लगता है। कुंईयों का महत्व 1987 ई. के भयंकर सूखे के समय देखा गया जब सभी तालाबों का जल सूख गया तब भी इनमें जल मौजूद था।

राजस्थान में जल संरक्षित करने का एक परम्परागत स्रोत कुंई है

झालरा

झालरा मनुष्यों द्वारा निर्मित एक आयताकार एवं पक्का तालाब होता है जिसके तीन अथवा चारों ओर सीढ़ियां एवं बरामदे बने होते हैं, जिसका वास्तुशिल्प सुंदर होता है। यह अपने से ऊँचे तालाबों एवं झीलों के रिसाव से जल प्राप्त करता है और इसका अपना स्वयं का कोई जलस्रोत नहीं होता। झीलों का जल पेयजल के रूप में प्रयोग नहीं होता बल्कि धार्मिक कार्यों एवं सामूहिक स्नान आदि के कार्यों में प्रयोग होता है पर आजकल इनका प्रयोग बंद हो गया है।

झालरा सामान्यतः राजस्थान एवं गुजरात में पाये जाते हैं। सबसे पुराना झालरा जोधपुर का महामंदिर झालरा है जो 1660 ई. में धार्मिक कार्यों हेतु बना था। जोधपुर में 8 झालरा हैं जिनमें 2 शहर के अंदर एवं 6 शहर के बाहर हैं। वर्तमान में इनकी अवस्था अत्यंत सोचनीय है और ये कचरा निस्तारण के स्थान बन गये हैं।

टोबा

टोबा भी वर्षा के जल को संचित करने का एक प्रमुख परंपरागत माध्यम है। यह नाड़ी के समान परंतु उससे गहरा एक प्रकार का कच्चा तालाब होता है जिसे स्थानीय भाषा में 'टोबा' कहा जाता है। इसके निर्माण के लिए सघन संरचना वाली भूमि उपयुक्त होती है जिससे जल का रिसाव कम होता है। प्रत्येक गांव अथवा जाति में आबादी के हिसाब से टोबा बनाया जाता रहा है जिस पर जाति के लोग अपनी झोपड़ियां बना लेते हैं। टोबे में सामान्यतः वर्षभर जल उपलब्ध रहता है और यदि कभी कम हो जाता है तो आपसी सहमति से उसका समुचित उपयोग किया जाता है। एक टोबे के जल का उपयोग सामान्यतः 20 परिवार तक कर लेता है।

खड़ीन या जोहड़

डॉ. भँवरसिंह भाटी (बाड़मेर) से साभार प्राप्त खड़ीन परंपरागत तकनीकी ज्ञान पर आधारित वर्षा जल संग्रहण करने का एक माध्यम है जिसका विकास 15वीं सदी में जैसलमेर के पालीवाल ब्रह्मणों ने किया। यह मिट्टी का बना हुआ अस्थायी बाँधनुमा तालाब होता है जिसमें ढालवाली भूमि के नीचे दो तरफ मिट्टी की पाल उठाकर और तीसरी

कृषि, पेयजल एवं भूमिगत जल स्तर को ऊपर लाने का सबसे प्रमुख साधन खड़ीन या जोहड़ है

टोबा भी वर्षा के जल को संचित करने का एक प्रमुख परंपरागत माध्यम है। यह नाड़ी के समान परंतु उससे गहरा एक प्रकार का कच्चा तालाब होता है जिसे स्थानीय भाषा में 'टोबा' कहा जाता है। इसके निर्माण के लिए सघन संरचना वाली भूमि उपयुक्त होती है जिससे जल का रिसाव कम होता है। प्रत्येक गांव अथवा जाति में आबादी के हिसाब से टोबा बनाया जाता रहा है जिस पर जाति के लोग अपनी झोपड़ियां बना लेते हैं। टोबे में सामान्यतः वर्षभर जल उपलब्ध रहता है और यदि कभी कम हो जाता है तो आपसी सहमति से उसका समुचित उपयोग किया जाता है।

तरफ पत्थर की दीवार बनाकर वर्षा के जल को रोका जाता है। पाल की ऊँचाई 2-4 मी. तथा खड़ीन का विस्तार अधिकतम 5-7 किमी. तक होता है। जिस स्थान पर जल एकत्र होता है उसे खड़ीन तथा उसे रोकने वाले बांध को खड़ीन बांध कहते हैं। खड़ीन बांध इस प्रकार से बनाया जाता है कि जल के अधिक आवक पर अतिरिक्त जल ऊपर से निकल जाय और अगली खड़ीन में प्रवेश कर जाय। खड़ीनों में बहकर आने वाला जल अपने साथ उपजाऊ मिट्टी बहाकर लाता है जिससे फसल अच्छी होती है। खड़ीनों के आसपास ढलान वाली भूमि पर कुँएं बनाये जाते हैं जिसमें खड़ीन से रिसकर जल आता रहता है और उसका उपयोग पेयजल के रूप में होता है। खड़ीन का जल जैसे-जैसे सूखता है तो उस भूमि में नमीं के आधार पर फसलें उगाई जाती हैं। राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्रों-जैसलमेर, बाड़मेर इत्यादि में कृषि, पेयजल एवं भूमिगत जलस्तर को ऊपर लाने का सबसे प्रमुख साधन खड़ीन या जोहड़ ही है।

जल संचय के परम्परागत स्रोतों में टोबा का महत्वपूर्ण स्थान है

प्रासंगिकता

भारत के पास सम्पूर्ण विश्व के जल का मात्र 4% जल है और अत्यधिक दोहन के कारण जलस्तर लगातार नीचे जा रहा है। एक आंकड़े के अनुसार भारत में प्रतिदिन लगभग 175 अरब घन मीटर भूमिगत जल निकाला जाता है जो कि पूरे विश्व में सबसे अधिक है पर यह विडंबना है कि उसके रिचार्जिंग की कोई व्यवस्था नहीं है। राजस्थान में भारत का मात्र 1% जल ही उपलब्ध है और उसमें भी राजस्थान के अलग-अलग भागों में जल का वितरण असमान है। राजस्थान की 90% आबादी पेयजल के लिए भूमिगत जल स्रोतों पर निर्भर है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी, जहां पर जल के प्राकृतिक एवं परंपरागत स्रोत उपलब्ध हैं, कुल उपयोग का 91% एवं कृषि के लिए कुल उपयोग का 77% भाग भूमिगत जल से पूरा किया जा रहा है। राजस्थान में सुविधाओं के बढ़ने एवं बिजली की आपूर्ति के कारण भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन हो रहा है जिससे जलस्तर बड़े तेजी से नीचे गया है। वर्तमान में अत्यधिक जलदोहन के कारण राजस्थान के 236 ब्लाकों में से 140 में भूमिगत जल पूर्णतया समाप्त और 50 जोन में स्थिति काफी गंभीर है। भूजल स्तर के काफी नीचे जाने से जल में फ्लोराइड की मात्रा बढ़ी है जो कि कई प्रकार के रोगों का कारण बन रही है। राजस्थान में भू-जल स्तर के लगातार नीचे जाने के कारण 27 जिलों के भू-जल में अत्यधिक खारापन, 30 जिलों में अत्यधिक फ्लोराइड एवं 28 जिलों के भूजल में लौहतत्व एवं अन्य रसायन घुले हुए पाये गये हैं। राजस्थान के उन लोगों ने, जो कि शायद आज की तरह इतने शिक्षित और विवकेशील नहीं रहे होंगे, जल संचय एवं उसके संरक्षण की जो प्रणाली विकसित की उसे देखकर आश्चर्य होता है पर साथ ही यह देखकर दुःख भी होता है कि उन्हीं के विवेकी वंशज आज उन धरोहरों को प्रदूषित करने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। जो जल स्रोत कभी पूरे महाल या क्षेत्र की प्यास बुझाते थे, वे आज राष्ट्रीय धरोहर तो घोषित कर दिये गये हैं पर उनके अस्तित्व पर ही संकट मंडरा रहा है।

राजस्थान में जल के अंधाधुन दोहन ने स्थिति को काफी गंभीर बना दिया है और इस विषय पर सभी को सोचने एवं इस समस्या का हल निकालने को विवश कर दिया है। इस गंभीर समस्या के हल का एकमात्र सबसे सरल एवं सस्ता उपाय वर्षा के जल को विभिन्न माध्यमों द्वारा संरक्षित करके किया जा सकता है। भारत में प्रतिवर्ष औसतन 70 हजार एकड़ घनमीटर वर्षा जल प्राप्त होता है और यदि उसे ही रोक लिया जाय तो उतनी ही भूमि पर एक मीटर जल खड़ा हो जाय। इतना ही नहीं, यदि औसत वर्षा होती है तो भी एक बरसाती मौसम में एक हजार वर्गफीट की छत से भी लगभग एक लाख लीटर जल को संरक्षित किया जा सकता है।

राजस्थान में तो वर्षा जल संचय स्रोतों-तालाब, झील, नाड़ी, बावड़ी, झालरा, टोबा, बेरी और खड़ीन या जोहड़ की एक समृद्ध परंपरा रही हैं। आज आवश्यकता है इन परंपरागत जल स्रोतों के संरक्षण एवं उपयोग की और इन्हीं माध्यमों द्वारा जल का दोहन रूकेगा और साथ ही भूजल जलस्तर भी ऊपर आयेगा। यदि समय रहते ध्यान न दिया गया तो शचीन्द्र भटनागर की यह पंक्ति अक्षरशः सिद्ध साबित होगी कि:

एक जल की बूँद को इंसान तरसेंगे यहां,
अनगिनत साधन न कोई साथ फिर देंगे यहां।

इसलिए आज आवश्यकता है अपने इन परंपरागत जल स्रोतों के संरक्षण एवं उपयोग की और इसी माध्यम द्वारा हम अपने राष्ट्रीय धरोहरों को संरक्षित कर पायेंगे और यही हमारे पूर्वजों को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

संपर्क करें:
डॉ. राकेश कुमार दूबे
म.नं. 168, नेहियॉ, वाराणसी
उत्तर प्रदेश-221202, भारत
मो.न. 9307035659